पूर्वोत्तर सृजन पत्रिका: विशेषज्ञों द्वारा समीक्षित वार्षिक हिंदी ई-पत्रिका
वर्ष: 2; संख्या:2; 2021; पृष्ठ संख्या: 88-100

# आमा और हमारा घर

✍ डॉ. मिलन रानी जमातिया

व्यक्ति के लिए यह जीवन और दुनिया दोनों एक रहस्य है। संवेदनशील व्यक्ति के लिए भी उनके परतों को खोल पाना असम्भव-सा है, फिर मुझ जैसी अनाड़ी के लिए जिसने कभी क्रिएटिव लेखन न किया हो, उसके लिए यह कार्य जुगनुओं के सहारे अंधेरे में राह तलाशने जैसा है। खैर, छोड़िए इन बातों को, दिल-दिमाग में यादों का मेला चलता रहता है, जहाँ सबकुछ है पर पहचान नहीं है, उसका रूप-स्वरूप मेले में ही विलीन हो जाता है, समय रहते इसे संवेदनशील लोगों के साथ बाँटा जाए तभी इसकी सार्थकता है। यही सोचकर 'आमा' की कुछ यादों को समेटकर उसे आप सबके साथ बाँटने जा रही हूँ।

मुझे मेरी 'आमा' दुनिया की सबसे खूबसूरत स्त्री लगती थीं। आमा ज्यादा लम्बी नहीं थीं, गदरीले शरीर, गोल चेहरा, चौड़ा माथा, छोटी गोल आँखें, कानों में कमल फूल का वाखुङ (कान की बाली), चपटी नाक में एक छोटी-सी खूबसूरत 'नकफु' (नथ), कलाइयों में सोने के दो बड़े-बड़े कड़े और दाहिने हाथ की बाँह में सोने की एक बड़ी ताबीज पहनती थी। वे अक्सर हरे बॉर्डर वाली गुलाबी रिगनाई पहनती थीं, उस पर लाल, हरा, पीला एवं सफेद रंग के धागे से कसीदेकारी की हुई रिसा बाँधती थीं। गोरी होने के कारण आमा पर यह वेश-भूषा बहुत फबता था। आमा को साफ-सफाई बहुत पसंद थी। मैंने हमारे आंगन को जिसके बीचों-बीच 'कुथा नक' (मिट्टी का घर) था, जिसकी दीवारें सफेद मिट्टी की थी, जिस पर लाल रंग के 'चारां' की छज्जे थी। आंगन के पार एक छोटी सी पोखरी, जिसके चारों तरफ सुपारी और केले के पेड़ हुआ करते थे, उसे कभी गंदा नहीं देखा। घर के पिछवाड़े में कुनिथां (जनजातीय माप) खेत था, जो हमेशा मिर्ची, टमाटर, आलू, प्याज, लहसुन, शकरकंद, सादा, मुंगफली आदि फसलों से भरा रहता था। मैंने आमा को कभी भी आराम से सुस्ताते नहीं देखा। घर में सबसे पहले उठती थीं और देर रात काम करती रहती थीं। कपास से बीज निकालना, रित्राक (चादर), दुग्री (चादर), रिसा-रिगनाई के लिए धागे तैयार करने का काम आमा रात को ही करती थीं।

आमा के साथ मेरी सबसे खूबसूरत याद को याद करती हूँ तो आज भी मन खुश हो जाता है। एक

दिन आमा 'चार'(=मचान जो कि सब्जियों की बेलियों को सहारा देने के लिए लकड़ी या बाँस को जमीन पर गाड़कर बनाया जाता है) बना रही थीं। वे बहुत व्यस्त थीं, दाईं कमर की रिगनाई में दा बरक (पहाड़ी दाव) और बाईं तरफ की कमर में 'वारुक' (बाँस का ऊपरी हिस्सा, जिसे पतला चिरकर बाँधने के काम में लाया जाता है।) खोंसी हुई थी। आमा दङ खींचकर ले आती और चार के नीचे जहाँ सब्जियाँ लगी हुई हैं, उसके पास गाड़ देती थीं। तभी चपटी नाक जो हमेशा बहती रहती थी, बहुत ही दुबली-पतली, सांवली और झबरीले बालों वाली आबेति रोती हुई आई और बोली-

आबेति- आ.....मा! आबेराय ने मुझे खिक्रकलता से मारा....।

आबेराय- आमा! आबेति झूठ बोल रही है।

आबेति- आमा! आबेराय मुझे 'बाई' नहीं बोलता है।

आमा तुरन्त आयीं। आमा को देखकर आबेराय भागने लगा, लेकिन दो-ढाई साल का लड़का कितना दूर भागता, वह पकड़ा गया। आमा ने उसे चार की एक थूनी में वारुक से बाँधकर मुझे उसके हाथ से खिक्रकलता छीनकर देते हुए कहा- 'आबे! इसे खिक्रकलता से जितना मारना चाहो, मारो।' आमा वहीं खड़ी मुस्कुरा रही थी। आबेति ने भी आबेराय को खिक्रकलता से दो-तीन दिया, फिलहाल बदले में आबेति को बाद में आबेराय से डबल मिला।

आबेति को उसकी आमा, अन्य घर वाले साथ ही साथ आस-पड़ोस वाले 'आबे' बुलाते थे। जब वह डेढ़ साल की हुई, तभी उसे एक गोलू-मोलू प्यारा-सा भाई मिला, कुमाजोक (दाईमाँ) ने उसके नामकरण में जरा-सी भी देरी नहीं लगायी, उसके इस दुनिया में आते ही वह खुशी से बोल पड़ी 'देखो! आबेति का भाई 'आबेराय' आया है।' इस तरह बाकी लोगों में भी यही नाम चर्चित हो गया। पड़ोस की भाभी अक्सर आबेति को छेड़ती थी- 'आबेति! तुम्हारी आमा अब तुम्हें प्यार नहीं करती है। तुम आमा को कादिगांग नदी किनारे मिली हो...वगैरह-वगैरह....पर आबेति को इन सब बातों का अर्थ समझ में नहीं आता था, इसलिए उस पर असर भी नहीं होता था। फिर क्या था; आबेति और आबेराय दोनों लड़ते-झगड़ते बड़े होने लगे।

कई दिनों से हमारे घर कई रिश्तेदार लगातार आ रहे थे। जहाँ तक मुझे याद है सबसे पहले हद्राई गाँव वाले बड़े मामा जी आये थे। वे अपने साथ ढेर सारा चिरा (चिवड़ा) और बताशे लाये। वे जब भी हमारे घर आते, ये दो चीजें जरूर लाते थे। हम बच्चे भी चिरा-बताशे खाने के लिए उनका इंतजार किया करते। इस बार वे हमारे घर एक दिन रुके थे। फिर कुछ दिन बाद दूर के एक मामा जी एक आदमी के साथ आये। साथ आये व्यक्ति को हमने पहली बार देखा था। वे आमा और बाबा के साथ बहुत देर तक बात करते रहे, लौटने लगे तो बाई कतो (बड़ी दीदी) और दादा कतो (बड़े भैया)

को भी साथ ले गये। उनके जाने के बाद आमा खूब रोयी, शायद आमा भी साथ जाना चाहती थी; पर बाबा ने उन्हें रोक लिया। उस दिन उन्होंने रात को खाना भी नहीं खाया। हम बच्चों ने भी ठीक से खाना नहीं खाया। उन दिनों जब भी घर में कोई आता था, मुझे और आबेराय को बाहर खेलने भेज दिया जाता था। हम दोनों भी आज्ञाकारी बच्चों की तरह किसी को डिस्टर्ब नहीं करते थे, पर उस दिन आमा को उदास और रोते देखकर हम दोनों को बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। हम दोनों अचानक उस दिन बहुत समझदार बन गये थे, झगड़े-बिना ही शाम हो गयी और फिर सुबह भी। जबकि अक्सर एक-दूसरे से झगड़ा किए बिना हमारा खाना नहीं पचता था। आमा इससे परेशान रहती थी। अभी आमा की उदासी दूर हुई नहीं कि दूसरे ही दिन छोटे मौसाजी अपने किसी रिश्तेदार के साथ प्रकट हुए। मैं और आबेराय तिकार के नीचे खेल रहे थे। उन्होंने मुझे देखते ही पूछा- आफु! हमारे घर घूमने चलोगी न...? हमारे घर ढेर सारे आम, लीची, अनानास हैं। तुम खूब खाना...।

मैंने भी सहजता से जबाव दिया- ईं यङ! आमा बाय बेराई फायनाई। (हाँ मौसाजी! आमा के साथ आऊँगी।)

आबेराय लगभग उछलता हुआ बोला- यङ! मैं भी आऊँगा।

मौसाजी- द आफु (शब्बास बेटा)।

मौसाजी भीतर जाकर आमा-बाबा से बात करने लगे। इसी बीच छोटी दीदी तैयार होकर बाहर आयी। तभी आमा बाहर निकली। मैं और आबेराय अभी भी तिकार के नीचे ही खेल रहे थे। उन्होंने आकर मेरा हाथ जोर से पकड़ लिया और मौसाजी और बाबा को संबोधित कर बोली- आबे! कहीं नहीं जायेगी। वह मेरे साथ ही रहेगी।

मौसाजी- बक्ति! तुम समझने की कोशिश करो।

आमा- मुझे कुछ भी नहीं समझना।

बाबा बरामदे में ही चुपचाप खड़े थे। मौसाजी ने किसी से कोई बहस नहीं की- 'ठीक है, आप सारे लोग भी साथ चलते तो मुझे अच्छा लगता। खैर छोड़ो, आप सब अपना ख्याल रखना।' इतना ही कहा और छोटी दीदी को साथ लेकर चले गये।

हमारे घर का माहौल पूरी तरह बदल चुका था। अब घर में आमा-बाबा, मैं और आबेराय ही रह गए थे। इधर दो-तीन दिनों से रात को जब भी हम सब खाने पर बैठते, किसी न किसी बात को लेकर आमा और बाबा में बहस छिड़ जाती थी। जो तभी शांत होती थी, जब आमा रोती हुई रसोई से बाहर निकल जाती। बाबा प्राइमरी स्कूल के टीचर थे, पर वे भी आजकल कहीं नहीं जाते, दिन-रात रेडियो में खबर सुनते रहते थे। कोई किसी से ठीक से बातचीत नहीं करते थे। दोनों बड़े ताऊजी, बुआजी और चाचाजी के घर भी हमारे घर के आस-पास ही थे। वे दिन में एक बार आमा और बाबा से मिलने आते थे। वे बाबा को कुछ समझाते थे, पर बाबा उन्हें ना कह देते थे, और यह सुनते ही आमा रोने लगती

थीं। ताऊजी, चाचाजी के घरों की महिलाएँ, बच्चे और बुजुर्ग अपने-अपने रिश्तेदारों के यहाँ जा चुके थे, वहाँ अब केवल पुरुष ही बचे थे। हमारे घर के अलावा बुआजी के छोटे बेटे के घर में ही औरतें और बच्चे थे। उनकी छोटी बहू करीब नौ महीने के पेट से थी, साथ में डेढ़-दो साल की गोद की बच्ची। वे भी कहीं नहीं गये। आमा उनके वहाँ दिन में कई बार हालचाल पूछने के लिए जाती थी। इधर हमारे घर अक्सर कई लोग आने लगे थे। वे आमा और बाबा से मिलकर चले जाते थे। यह सिलसिला दो-तीन दिन तक चलता रहा। एक दिन एक बुजुर्ग आदमी हमारे घर दोपहर को आये। कुछ देर खड़े-खड़े ही आमा और बाबा से बातचीत की। फिर जाते-जाते उन्होंने हम दोनों भाई-बहन की तरफ इशारा करके आमा से कहा- आहनकजोक (बहन)! इन दोनों बच्चों को लेकर तुम आज शाम यहाँ से निकल जाओ। शाम को साका (बुआजी की छोटी बहु के लिए) वाले भी निकलेंगे।

बाबा उस आदमी के सामने कुछ नहीं बोले, पर उनके जाते ही आमा से बोले- 'तुम और बच्चे कहीं नहीं जाओगे।'

तभी आमा चीखती हुए बोलीं- 'तुम अकेले अपनी जमीन पर मरना, मैं बच्चों को लेकर निकल रही हूँ।' इसके बाद आमा और बाबा के बीच कुछ देर तक बहस होती रही, जो हमारे समझ से परे थी। आमा बाबा से बहस करना छोड़कर पास ही उगे बाँसों के झुरमुट में गयीं, वहाँ से तीन-चार 'मिया' काटकर लायी, उन्हें जल्दी-जल्दी साफ किया और उसके 'आंवांद्रु' सब्जी बनायी। आमा के हाथ की 'मिया आंवांद्रु' मुझे बहुत पसंद थी। गर्म पानी में बेरेमा और मिर्ची के ऊबलने की खुशबू और फिर 'मिया आंवांद्रु' में डली हुई कच्ची लहसून की खूशबू नथूनों में पहुँचते ही भूख को जगा देती है। सब्जी पकने के बाद आमा हम दोनों भाई-बहन के पास आई। हम दोनों को पोखरी ले जाकर मुँह-हाथ धुलवाया, खुद भी नहायी। उसके बाद आमा हमें नकगांति ले आयीं। हम दोनों को थोड़ा-थोड़ा खाना निकालकर दिया और बोली- 'तुम दोनों मेरे अच्छे बच्चे हो, झगड़ा मत करना, जल्दी से खाना खत्म करो।' आमा ने रसोई से ही बाबा को आवाज दी- 'ओय! आपके लिए भी थोड़ा निकाल दूँ?' उधर से कुछ भी जबाव नहीं आया। तब तक हम दोनों खाना खा चुके थे। आमा ने हमारे हाथ धुलवाये और तुरन्त हमें लेकर नककतर आयीं। तभी छोटे भैया (बुआ जी का लड़का) हमारे बरामदे में अचानक प्रकट हुआ और आमा से बोला- 'मामी! हम आगे बढ़ रहे हैं। आप लोग भी जल्दी निकलिए।'

आमा- ईं! निरग हिङसकदि। (हाँ, आप लोग आगे बढ़िए।)

आमा ने जमीन पर एक रिगनाई बिछाते हुए मुझे कहा- 'आफु! अपना और भाई का सामान यहाँ रखो।' मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था, पर आमा

की आज्ञा का पालन कर रही थी। आमा ने कोने में रखी हुई एक लाङगा कतो अपनी तरफ खींची। सन्दूक खोलकर कुछ सामान फटाफट लाङगा में रखा तो कुछ को वापस संदूक में। आमा हर काम इतनी फूर्ति से कर रही थीं कि मैं सब भूलकर उन्हें ही देख रही थी। तभी बाबा जो अब तक चुपचाप बरामदे में बैठे हुए थे, भीतर आये और आमा के हाथ से सामान छीनकर दूर फैंकते हुए बोले- 'आज इस घर से केवल लाश निकलेगी।' आमा रोती हुई कुछ बोल रही थीं, तभी बाबा ने हम तीनों को बाहर से बंद कर दिया। अब आमा के साथ मैं और आबेराय भी रो रहे थे। आमा बाबा से दरवाजा खोल देने के लिए बार-बार विनती कर रही थीं।

इसी बीच बड़े ताऊजी कुछ लोगों के साथ हमारे घर आये। उन्होंने तुरन्त दरवाजा खोला और आमा से कहा- 'जितनी जल्दी हो सके, बच्चों को लेकर यहाँ से दूर चली जाओ।' आमा लगातार रोए जा रही थीं, वह कुछ सामान उठाने ही जा रही थीं कि बड़े ताऊजी बहुत धीमी आवाज में बोले- 'बहू! समय नहीं है, अब तुम निकलो।' आमा ने लाङगा कतो की रस्सी को तुरन्त सिर पर रखा, आबेराय को एक हाथ से गोदी में उठाया और दूसरे हाथ से मेरी बाँह को मजबूती से पकड़ती हुई लगभग दौड़ती हुई बाहर निकली। जैसे ही हम बाहर निकले मैंने अपने आंगन में लाठी, दाव आदि लिए हुए कई अपिरिचित लोगों को देखा। उस समय शाम के 5.00 से 5.30 बज रहे होंगे, पूरी तरह अंधेरा नहीं हुआ था। जब हम घर के आंगन को पार कर रहे थे तो किसी ने आमा से कहा- 'लड़की को काली रिगनाई ओढ़ा देना।' आमा ने चलते-चलते 'ईं' (हाँ) कहा और बहुत ही तेज कदमों के साथ आंगन पार किया। दरअसल मैंने सफेद फ्रॉक पहन रखी थी।

एक परिचित भैया हमें बड़े ताऊजी की पोखरी के किनारे तक छोड़ने आये थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा-'काकी! आप लोग सुकूईदुक गाँव चले जाइए।' आमा ने 'हाँ' में सिर हिलाया और मेरा हाथ पकड़कर दौड़ने लगी। हम कब तक दौड़ते रहे मुझे याद नहीं। एक जगह जाकर आमा ने मुझे थोड़ा रुकने के लिए कहा और सबसे पहले आबेराय को जमीन पर उतारा साथ में लाङगा कतो (बड़ी टोकरी) को भी। उन्होंने लाङगा कतो में से एक रिगनाई निकाली और वहाँ से कुछ सामान निकालकर रिगनाई में बाँधकर वह गठरी मुझे दी और कहा- 'आफु! इसे तुम उठाओ।' मैंने 'हाँ' में सिर हिलाया। खाली की गई लाङगा में आमा ने आबेराय को बिठाया। जब आमा यह सब कर रही थी, मैं उनके बगल में खड़ी होकर अंधेरे में इधर-उधर देख रही थी, तभी मैंने एक तरफ के आसमान को बहुत लाल देखा, उस तरफ से बहुत सारी आवाजें भी आ रही थीं। मैंने आमा से कहा- 'आमा, आमा! देखो न, उस तरफ का आसमान बहुत लाल है।' आमा ने पलटकर उस तरफ देखा और उसकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे, फिर वह मुझसे बोली- 'आफु! जितना तेज दौड़ सको, दौड़ो, मैं तुम्हारे पीछे हूँ।'

शायद आबेराय कुछ ही देर में सो गया था, उसकी कोई आवाज नहीं आ रही थी। आमा को कितनी थकान हुई होगी, मुझे पता नहीं, पर उस रात मुझे बिल्कुल थकान नहीं हुई। इस तरह हम सुकूईदुक गाँव पहुँचे। जब हम वहाँ पहुँचे तो पहरा दे रहे कुछ लोगों ने आमा को बताया कि गाँव की महिलाएँ, बच्चे और बुजुर्ग दिन रहते-रहते सादुमुरा गाँव निकल गये हैं। हम उस गाँव में पानी पीने भर तक ही रुके। आमा और मैं रातभर चलकर भोर में सादुमुरा गाँव पहुँचे। सादुमुरा गाँव के चकदिरी का आंगन लोगों से खचाखच भरा हुआ था। आमा और मैं भी वहीं पहुँचे।

उस दिन भोर से ही बारिश होने लगी थी। सारे लोग अस्थिर, हैरान-परेशान थे, बड़े-बुजुर्गों के चेहरे पर तनाव साफ झलक रहा था। औरतें रो रही थीं, कुछ बच्चे भी चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे थे। आमा ने मुझे रोने से मना किया था, वे भी शांत थीं , आबेराय बीच-बीच में आमा का दूध पी लेता था। हम तीनों चकदिरी के आंगन में ही एक पेड़ के नीचे खड़े थे। अभी पूरी तरह सवेरा नहीं हुआ था कि 10 -15 आदमी दौड़ते हुए चकदिरी के पास आए। उन्होंने चकदिरी से जल्दी-जल्दी कुछ बातें की। उसके बाद चकदिरी ने आंगन के बीचोंबीच में आकर घोषणा की- 'इस गाँव को तुरन्त खाली करना है। सारे लोग तुरंत 'मोताय कामि' की तरफ आगे बढ़ें।' चकदिरी का वाक्य पूरा होते-होते लोगों में भगदड़ मच चुकी थी। आमा के मुँह से केवल 'उफ्फ' निकली, उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और कहा- 'आबे आफु! मेरा हाथ पकड़े रहो, छोड़ना नहीं।' मैंने भी आमा का हाथ जोर से पकड़ लिया। सारे लोग मोताय कामि की तरफ बढ़ने लगे। औरतों-बच्चों की भीड़ में से एक ही आवाज गूँज रही थी- जल्दी करो, जल्दी करो, जल्दी करो....।

सादुमुरा गाँव के चकदिरी का घर टीले पर था। आमा और मैं भी एक-दूसरे का हाथ जोर से पकड़े भीड़ के साथ टीले से उतरने लगे। टीला खत्म होते ही एक छोटी-सी नदी थी, जो भोर की बारिश में बड़ी बन गयी थी। सारे लोग एक-दूसरे को धक्का-मुक्की देते हुए नदी पार करने लगे। आमा और मैं भी नदी में उतरे, अभी तीन-चार कदम ही बढ़ाए होंगे कि किसी ने मुझे जोर से धक्का दिया और मैं आमा की पकड़ से छूट गई। मुझे आमा का केवल 'आफु-आबे' चीख सुनाई दी। भीड़ में कुछ देर तक मैं पानी में बहती रही। काफी पानी पेट में जा चुका था, तभी किसी ने मेरे बालों को पकड़कर जोर से खींचा। जब मुझे होश आया तो मैं खेत में लेटी हुई थी और कुछ लोग मेरे आस-पास खड़े थे। एक आदमी ने मुझे कंधे से पकड़कर खड़ा किया और कहा- 'आफु! मेरा हाथ पकड़ो और छोड़ना नहीं। मैंने उसका हाथ जोर से पकड़ लिया और उसके साथ भीड़ में दौड़ने लगी, लेकिन मैं लगातार आमा, आमा...चिल्लाकर रो रही थी। मैं कब तक ऐसे रोती रही, याद नहीं है। आमा और आबेराय कहाँ हैं, किस हाल में हैं, यह भी मुझे मालूम नहीं था। कुछ औरतें रुककर उस आदमी से जरूर पूछती थी- 'आफु की आमा कहाँ है?' उनका सवाल सुनकर मैं और

भी जोर से रोने लगती। वह आदमी सबको एक ही जबाव देता था-'बाबा सब ठीक कर देंगे।' और मुझे लेकर आगे बढ़ जाता था। मुझे उस आदमी का चेहरा याद नहीं है, बस इतना ही याद है कि उसके सिर पर रित्राक की बहुत बड़ी गठरी थी।

आखिर मैं और वह आदमी बाकी लोगों के साथ मोताय कामि पहुँच ही गये। लोगों ने बताया खेरफाङ के घर में जाना है, भीड़ में चलते हुए हम खेरफाङ के आंगन में पहुँचे। अब तक मेरा रोना-धोना सबकुछ बंद हो चुका था। खेरफाङ के आंगन में स्त्री-पुरुष, बच्चे, बुजुर्ग लगभग सारे लोग 'जय बाबा गॉरिया' का नारा लगा रहे थे। कई लोग रो रहे थे तो कुछ लोग शांत भी करा रहे थे। बहुत सारे लोगों के हाथ में बड़ी-बड़ी लाठियाँ और दाव थे। पुरुषों और युवकों ने सिर और कमर में रिसा (पारंपरिक वस्त्र) बाँध रखे थे। काफी डरावना माहौल था। खेरफाङ के आंगन में कई घायल और बेहोश स्त्री-पुरुष लाये जा रहे थे। बीच-बीच में 'जय बाबा गॉरिया, जय बाबा' के नारे गूँज रहे थे।

मुझे किसी से कोई मतलब नहीं था, मेरी आँखें केवल और केवल आमा और आबेराय को खोजती थीं, तभी मैंने भाभी (बुआजी की छोटी बहू, जो नौ महीने के पेट से थी) को एक पेड़ के नीचे बैठी हुई देखा। मैंने तुरन्त उस आदमी से अपना हाथ छुड़वाया और भाभी के पास दौड़कर चली गयी। वह आदमी मेरे पीछे-पीछे भाभी के पास पहुँचा, मैंने भाभी का हाथ जोर से पकड़ लिया। उस आदमी ने भाभी से कुछ बातें की फिर चला गया। भाभी ने मुझे बहुत प्यार और अपनेपन से बगल में बिठाया और मेरे घुंघराले बालों को संवारते हुए पूछा- 'आफु! तुम घर से फ्रॉक पहनकर नहीं आई?' भाभी के इस सवाल पर मैंने पहली बार खुद को देखा, मेरे शरीर पर बस इलास्टिक वाली चड्डी थी। फ्रॉक शायद नदी में फटकर बह गई थी। मैं सहमकर भाभी से और सटकर बैठ गयी। शाम को मैंने आमा को खेरफाङ के आंगन की तरफ आते देखा, आबेराय लाङगा में बैठा हुआ मुस्कुरा रहा था। आमा को देखते ही मैं दौड़कर उनके पास चली गयी। आमा लाङगा कतो वहीं रखकर मुझे गले लगाकर देर तक रोती रही, मैं भी आमा को रोते देखकर फिर से रोने लगी। आमा जब शांत हुई तो मैंने कहा- 'आमा! अब मैं पैदल नहीं चलूँगी, आबेराय के साथ मैं भी लाङगा कतो में बैठूँगी।' आमा कुछ नहीं बोलीं, मेरा और आबेराय का हाथ पकड़कर भाभी के पास आयीं। हमें भाभी के बगल में बिठाया और एक तरफ चली गई, कुछ देर बाद बाद लौटी तो उनके हाथ में दो 'माय कके' थे, उन्होंने मुझे और आबेराय को एक-एक दिया, तभी एक आदमी पानी का मटका लेकर सबको पानी के लिए पूछता हुआ पास आया। आमा ने उस आदमी से पानी लेकर जी-भर कर पीया और हम दोनों को भी हथेली में लेकर पिलाया।

माय कके खाने के बाद मैं और आबेराय वहीं मिट्टी से खेलने लगे। आमा को हम दोनों का मिट्टी से

खेलना बिल्कुल पसंद नहीं था, रोज हमें डाँटती थीं, पर आज कुछ नहीं बोलीं, बस चुपचाप हमें देखे जा रही थीं। चारों तरफ अजीब सी मुर्दनी छायी हुई थी, कोई किसी से ज्यादा बातचीत नहीं कर रहे थे, केवल बीच-बीच में कुछ औरतों की चींखें सुनायी पड़ रही थीं। तभी पाँच-छ: लोग हाँफते हुए खेरफाङ के घर आये। उन्होंने एक साथ कई गाँवों का नाम लेते हुए और बताया कि इन गाँवों में एक भी घर नहीं बचा है। हमारा गाँव खुमपोईपोङ भी उनमें से एक था। जिन गाँवों का नाम लिया जाता वहाँ की औरतें चींखें मारते हुई रोने लगतीं, कुछ लोग गुस्से में तमतमाते हुए इधर-उधर आँगन में घूमते।

आमा औरों की तरह नहीं रोयीं, बस हम दोनों को खेलते देखती रही। आमा ने हमारे गाँव के एक आदमी को देखा तो उन्हें इशारे से पास बुलाया। उन्हें बाबा के बारे में पूछा, पर उस आदमी के पास बाबा की कोई खबर नहीं थी। आमा अब शांत दिख रही थी। हम खेरफाङ के घर एक ही दिन रहे। सारे लोगों को हदा बलङ (जमातिया समुदाय द्वारा सुरक्षित/नियंत्रित जंगल) में जाकर रहने के लिए कहा गया था। इसलिए सारे लोग जो उस वक्त खेरफाङ के घर आँगन में रह रहे थे, हदा बलङ चले आये। हम लोग हदा बलङ में कितने दिन रहे, भूखे रहे या कोई हमें भोजन-पानी पहुँचाता था, मुझे कुछ भी याद नहीं। याद है तो बस इतना ही कि हमें रोना, चीखना-चिल्लाना मना था। आमा भी हमें कुछ नहीं कहती थीं।

अचानक एक दिन पुलिस और आर्मी के लोग जंगल में आये। उन्हें देखते ही चारों ओर अफरा-तफरी मच गयी। वे लोग हमें भेड़-बकरियों की तरह हाँकते हुए एक स्कूल में ले आये। गाँव का वह छोटा-सा स्कूल और उसका आँगन लोगों से खचाखच भरा हुआ था। पाँव धरने तक की जगह नहीं थी। हमें वहीं रहने के लिए आदेश मिला। जिसको जहाँ जगह मिली लोग वहीं अपनी गठरी रखकर बैठ गये थे। आमा स्कूल की दीवार के सहारे हम दोनों को पकड़कर खड़ी रहीं। रात हुई तो एक औरत ने हमें भीतर बुला लिया। उस कमरे में पहले से लगभग 40-50 लोग थे। स्त्री-पुरुष, बच्चे सब एक ही जगह सो रहे थे। आमा को अचानक क्या हुआ, वह जोर-जोर से रोने लगीं। मैं और भाई आमा को पकड़कर वहीं खड़े रहे। तभी किसी ने आकर आमा को जोर से डाँटा, आमा कुछ नहीं बोलीं, बल्कि जहाँ खड़ी थीं, वहीं धीरे से बैठ गयीं। हम दोनों भाई-बहन भी आमा से चिपककर वहीं बैठ गये थे। हम कितने दिन उस स्कूल में रहे, याद नहीं ; पर जितने दिन हम वहाँ रहे, आमा हम दोनों भाई-बहन को गोदी में सुलाते हुए बैठकर ही सोती थीं। दरअसल वहाँ पैर फैलाने के लिए जगह भी नहीं थी।

उस राहत कैम्प में रोज सुबह एक गाड़ी बनरोटी लेकर आती थी। आमा बनरोटी लेने के लिए अक्सर मुझे भेजा करती थीं। मैं गाड़ी आने से पहले ही जाकर लाइन में खड़ी हो जाती थी, पर गाड़ी आते ही

लोगों की इतनी भीड़ लग जाती थी, ऊपर से धक्का-मुक्की इतनी कि पूछो मत। और फिर मैं लाइन से बाहर हो जाती थी। आमा मुझे रोज समझाती थी, पर मैं आमा और आबेराय के लिए कभी बनरोटी नहीं ला पायी। बनरोटी लेने आमा भी कभी नहीं गयीं। मुझे और आबेराय को लोग अपने हिस्से की बनरोटी खिला देते थे, आमा कभी नहीं खातीं। उस राहत कैम्प की एक बात मुझे बहुत बुरी लगती थी, वह यह कि लोग रात को बहुत पादते थे। वह आवाज मुझे बहुत नापसंद थी। आज भी याद करती हूँ तो मुझे ऊबकाइयाँ आती हैं।

एक दिन बड़े जीजाजी (बड़े ताऊजी के दामाद) हमें ढूँढते हुए उस राहत कैम्प में आये। उन्हें देखते ही आमा खूब रोयीं। हम सभी स्कूल के आँगन में ही एक पेड़ के नीचे बैठे थे। बड़े जीजाजी ने मुझे और आबेराय को गोद में बिठाकर खूब लाड़ दिया। उनसे ही आमा को मालूम हुआ कि बाबा, बड़े भैया (बड़े ताऊजी का बेटा) आदि उदयपुर के सरकारी जेल में हैं। उस दिन के बाद बड़े जीजाजी सप्ताह में एक बार हमसे मिलने आते थे, साथ में बाबा और अन्य रिश्तेदारों की खबर भी लाते थे। आमा जेल जाकर बाबा से मिलना चाहती थीं,पर उनके पास पैसे नहीं थे, न ही बड़े जीजाजी के पास इतना पैसा था कि आमा को बाबा से मिलाने जेल ले जा पाते।

कई दिनों के बाद छोटे मौसाजी राहत कैम्प में आये। कुछ देर आमा से बात की और लौट गये। दूसरे दिन छोटी मौसी भी साथ आयी। उस दिन शाम को राहत कैम्प छोड़कर हम छोटी मौसी के घर रहने चले आये, जहाँ छोटी दीदी पहले से रह रही थी। छोटी मौसी और मौसाजी के घर का माहौल हमारे घर से बिल्कुल अलग था। यहाँ सारे लोग ईसाई धर्मावलम्बी थे। सुबह से लेकर शाम तक घर में बाइबिल की चर्चा होती थी। रोज 15 से 20 लोग शाम को छोटी मौसी के घर प्रार्थना के लिए आते थे। बाई कोचोङति (मौसी की बड़ी बेटी) गिरजाघर में रोज बाइबिल क्लास लेती थी। मेरी और आबेराय की प्रारम्भिक शिक्षा इसी गिरजाघर से शुरू हुई। अब मेरी, छोटे भाई और छोटी दीदी की दिनचर्या मौसी के घर के माहौल के अनुसार ही हो गई थी।

आमा सबसे पहले उठतीं, घर-आँगन की सफाई कर सुबह का खाना बनातीं, सबको खिलाकर खुद भी थोड़ा-सा खातीं और गाँव की अन्य औरतों के साथ काम पर निकल जाती थीं। मौसी के यहाँ मौसी-मौसाजी के अलावा पाँच (05) लोग और थे (चार बेटियाँ और एक बेटा), हम भी चार लोग थे, कुल मिलाकर ग्यारह (11) लोगों का एक बड़ा संसार था। आमा दिन-रात मेहनत करती थीं। मैं और भाई आमा के साथ जमीन पर ही सोते थे। आमा दिन में किसी से कुछ भी नहीं बोलती थीं, लेकिन रात को रोती थीं। मैं आमा की बाँह पकड़कर सोती थी, सोने से पहले मैं आमा के चेहरे को रोज स्पर्श करती थी। आमा का चेहरा, गर्दन आदि अक्सर आँसुओं से भीगे रहते, पर कोई आवाज नहीं आती थी। मैं सहमकर सो जाया करती थी। उन दिनों मुझे ठीक से नींद नहीं आती थी, मैं अक्सर सोते से आमा-आमा

चीखते हुए उठ जाया करती थी। सपने में लोगों की भीड़, चीख-पुकार, लाठी, दाव, घायल लोगों का बहता खून, नदी में डूबने का दृश्य, 'जय बाबा गॉरिया' का नारा आदि मुझे बहुत परेशान करते थे। मैं सोते-जागते यानी दिन-रात आमा के आस-पास ही रहना पसंद करती थी।

एक दिन बड़े जीजाजी छोटी मौसी के घर आये, कुछ देर बैठे ही थे कि आमा कुछ रुपए निकालकर लायी और जीजाजी से बोली-'मुझे आबे के बाबा से मिलना है। उस दिन मौसी के घर जीजाजी ज्यादा देर नहीं रुके। तीन-चार दिन बाद वे सवेरे-सवेरे फिर आये और आमा को साथ लेकर चले गये। उस दिन आमा काफी देर से घर लौटीं। घर में सारे लोग सो गए थे, मौसी-मौसाजी और मैं ही जगे हुए थे। मुझे मौसी ने भीतर जाकर सोने के लिए कई बार कहा, पर मैं नहीं सोई थी। आमा लौटीं तो मौसी से के गले लगकर खूब रोयीं। कई दिनों बाद आमा ने जेल में बाबा की एक झलक देखी थी। कैदियों से बात करने के लिए जेलर को पैसे देने पड़ते थे और उस दिन आमा के पास उतने पैसे नहीं थे।

उसके कुछ दिनों बाद आमा मुझे और आबेराय को लेकर खुमपोईलोङ गाँव के एक ताऊजी के पास आयीं। उनसे घर बनाने के लिए थोड़ी-सी जगह माँगी। ताऊजी ने अपने घर से थोड़ी दूरी पर घर बनाने के लिए हमें जमीन दी। हम वहाँ एक दिन रुके और मौसी के घर लौट आये। आमा ने मौसी को सारी बातें बतायीं। मौसी और मौसाजी दोनों चाहते थे कि बाबा के जेल से छूटने तक हम उन्हीं के साथ रहे, पर आमा अपने निर्णय पर अडिग रहीं। उनके बहुत समझाने के बावजूद आमा हम तीनों को (छोटी दीदी, मैं और आबेराय) को लेकर खुमपोईलोङ गाँव आ गयीं। हमारे पास सामान के नाम पर कुछ नहीं था। आमा के पास मौसी द्वारा दी गई दो रिसा और दो रिगनाई थे। मैं छोटी दीदी का फ्रॉक ही पहनती थी, आबेराय को छोटा गमछा पहनाया जाता था। घर छोड़ते समय आमा जो चीजें लेकर निकली थीं, वे सब कब-कहाँ छूट गयीं, आमा को याद ही नहीं रहा। दो पैसे भी आमा के हाथ में नहीं थे। जब हम वहाँ से निकले तो मौसी ने आमा को दो चूजे और एक बकरी दी। मौसाजी हमारे साथ खुमपोईलोङ गाँव आये और हमारे घर बनने तक रुके थे। यह घर हमारी पुश्तैनी जमीन से दो-ढाई किलोमीटर की दूरी पर था। बड़े ताऊजी, बुआजी, चाचाजी आदि दूसरी जगह पर जमीन लेकर बस गये थे। केवल हमारा परिवार ही एक तरह से बिखर गया था।

यहाँ आने के कुछ दिन बाद ही आमा ने बड़ी दीदी और भैया को अपने पास बुला लिया। बड़ी दीदी 14-15 साल की रही होगी, भैया बड़ी दीदी से 7 साल छोटे हैं। दोनों के आते ही आमा को बहुत संबल मिला। दोनों आमा के हर काम में कंधे से कंधा मिलाकर काम करते थे। आमा गाँव के चाचा-ताऊ आदि से बटाईदारी में पालने के लिए बकरियाँ और गाएँ माँगकर लायी थीं, उन्हें संभालने का काम हम तीनों (छोटी दीदी, मैं और आबेराय) का होता था। भैया गाँव के एक ताऊजी के

गाय-बैलों को चराते थे, बदले में उन्हें कुछ पैसा मिलता था। यहाँ आकर हम सारे बच्चे खुश रहने लगे थे। यद्यपि बड़ी दीदी, भैया और छोटी दीदी की पढ़ाई छूट गई थी। मेरा और आबेराय का स्कूल एडमिशन अभी तक नहीं कराया गया था।

हमें यहाँ आये कुछ ही महीने हुए होंगे कि आमा ने गाँव के दूसरे ताऊजी से रहने भर के लिए फिर जमीन ली और हम नयी झोंपड़ी बनाकर नयी जगह आ गये। यहाँ से हमारा पुराना घर जो कि अब खंडहर और जंगल बन चुका था; साफ-साफ दिखाई देता था। हमारी खेत भी दिखाई देती थी पर हम वहाँ फसल नहीं उगा सकते थे। आमा अक्सर हम बच्चों से कहती थी-'हम एक दिन अपने घर और जमीन पर जरूर लौटेंगे।'

इसी बीच आमा ने हमारी सारी मुर्गे-मुर्गियाँ, बकरियाँ और गाएँ बेचीं और एक दिन जेल जाकर बाबा को जामीन (बेल) पर छुड़वा लायीं। हमारी जिन्दगी में खुशियाँ लौट आयीं। बाबा ने आते ही हम भाई-बहनों का दाखिला स्कूल में कराया। वे हमें सुबह-शाम बिठाकर पढ़ाते थे, धीरे-धीरे आस-पड़ोस के बच्चे भी बाबा से पढ़ने आने लगे, पर बाबा किसी से पैसे नहीं लेते थे। उन्हें हम बच्चों का काम करना पसंद नहीं था। वैसे उनकी स्कूल की नौकरी छूट चुकी थी। बाबा ने घर के पास ही बटाईदारी के कुछ खेत लिए वहीं आमा के साथ मेहनत करते थे। कभी-कभी हम सब पुराने घर और खेत भी घूमने जाते थे। परिस्थितियाँ धीरे-धीरे सामान्य हो रही थीं। आमा और बाबा ने अपनी जमीन पर थोड़ी-सी फसलें भी उगायी थीं। इसी बीच आमा और बाबा ने एक सुन्दर-सा घर हमारी पुश्तैनी जमीन पर बना लिया। हम सभी बच्चे जब भी नये घर में जाते, कोई न कोई सामान उठाकर ले जाते। इस तरह धीरे-धीरे जरूरत की सभी चीजें वहाँ पहुँचा दी गयीं। आमा–बाबा ने तय किया कि सेना (बाबा गॉरिया के विसर्जन) के दिन मायलुमा-खुलूमा की पूजा कर गृह प्रवेश करेंगे पर किस्मत को यह नामंजूर था। सेना पूजा से एक दिन पहले रात के 9-10 बजते-बजते लोगों के चीखने-चिल्लाने की आवाज सुनायी देने लगी। हम सब घर से बाहर निकले, आस-पड़ोस वाले भी तुरंत निकले। फिर क्या था जहाँ हमारा नया घर बनकर तैयार खड़ा था, उस तरफ के आसमान में लालिमा छाई हुई थी, बीच बीच में काले-काले धुँआ उठ रहे थे। बाबा आंगन में इधर से उधर घूम रहे थे, आमा मेरा और आबेराय का हाथ पकड़कर रो रही थीं, साथ में दोनों दीदियाँ भी। भैया शून्य में पत्थर फैंक रहे थे।

तभी कुछ लोग दौड़ते हुए आये और एक तरह से आदेश देते हुए बोले - 'सभी औरतें और बच्चे इस जगह को जल्दी से खाली करें।' हम सबने वह जगह तुरन्त खाली की। लगभग 4-5 दिन बाद हम सब दुबारा वहाँ लौट आये। अभी स्थितियाँ सामान्य हुई नहीं कि अचानक एक दिन खुमपोईलोङ बाजार की कुछ दुकानें धूँ-धूँकर जलने लगीं। उस दिन बाबा हम को स्कूल की पढ़ाई के बारे में बता रहे थे। पर कुछ ही देर में पुलिस आ पहुँची और बाबा को लेकर चली गयीं। बाबा पर

दुकान से सामान चुराने और फिर उसे जलाने का आरोप लगा था। बाबा को इस बार भी जेल में रहना पड़ा, पर आमा की हिम्मत नहीं टूटी। आमा दूसरे दिन ही कई लोगों से मिलने गयीं, पर उनके पास बाबा को छुड़ाने के लिए पैसे नहीं जुट पा रहे थे। बाबा का पहले वाला केस भी अभी क्लियर नहीं हुआ था। आमा को अपनी मेहनत और लगन पर पूरा भरोसा था, हमें भी वह मेहनत करना ही सिखाती थी। आमा हम पाँचों बच्चों को पुश्तैनी जमीन पर ले जाती थीं, वहाँ गड्ढा खोदकर गारा बनाती, फिर उसके ब्लॉक्स बनाकर दीवारें खड़ी करती थी। हम बच्चे भी दिन-रात आमा के साथ काम करते थे।

बड़े ताऊजी भी रोज हमारी मदद करने आते थे। ताऊजी की राय से आमा ने हमारी कुछ जमीन बेची और बाबा को फिर छुड़वा लायीं। बाबा ने आते ही घर के अधूरे काम को तुरन्त पूरा किया और बिना पूजा किए ही हम नये घर में आ गये। बहुत दिनों तक गाँव वालों ने हमारे घर की पहरेदारी की। लगभग डेढ़ से दो सालों तक पुश्तैनी जमीन पर एकमात्र हमारा ही घर था।

मेरी आमा मेरे लिए दुनिया की सबसे बुद्धिमती, साहसी और मेहनती महिला थीं। वे हर काम बड़ी सूझ-बूझ के साथ करती थीं। न वे कभी डगमगायीं और न हमें बिखरने दिया। केवल उनकी हिम्मत और अथक श्रम के कारण हम अपनी जमीन पर लौट सके।

**शब्दार्थ :**

1 दङ- कटे बाँस या पेड़ का ऊपरी हिस्सा

2 खिक्रकलता- लोटा, जिससे पिछवाड़ा धोया जाता है।

3 बाई- दीदी

4 तिकार- जहाँ छज्जे का पानी गिरता है।

5 आफु-बेटा

6 साका- टीला में रहने वाले

7 मिया-बैम्बूशूट

8 आंवांद्रु-थोड़ा सा चावल का पाउडर और कच्ची लहसून डालकर बनायी जाने वाली सब्जी।

9 बेरेमा - शीदल/ड्राई फीश

10 नकगांति- रसोई घर

11 नककतर- बड़ा घर

12 कतो-बड़ी टोकरी

13 मोताय कामि- सामान्य तौर पर खेरफाङ के गाँव को जमातिया जनजाति के लोग मोताय कामि कहते हैं। गॉरिया पूजा के दौरान उन्हीं के आंगन में बाबा की विधिवत पूजा की जाती है।

14 रित्राक- पारंपरिक चादर

15 माय कके- पके भात को मुट्ठी में भींचकर माय कके बनाया जाता है।

16 रिसा- पारंपरिक पोशाक

17 रिगनाई- पारंपरिक पोशाक

**संपर्क-सूत्र :**
सहायक प्राध्यापिका
हिन्दी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय
ई-मेल : milanrani08@gmail.com

पूर्वोत्तर सृजन पत्रिका